IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

"कबीर की सामाजिक चेतना में प्रेमानुभूति और मानवतावाद"

Manoj Kumar

(Research Scholar)

Department of Yoga

Maharaja Agrasen Himalayan Garhwal University, Uttarakhand

Dr. Bharat Bhushan Singh

(Assistant Professor)

Department of Yoga

Maharaja Agrasen Himalayan Garhwal University, Uttarakhand.

शोध सारांश : कबीरदास प्रेम को जीवन का एक महत्त्वपूर्ण और अति आवश्यक तत्त्व स्वीकार करते हैं। प्रेम से उनका आशय सात्त्विक प्रेम से है न कि झूठे प्रेम से। वे संसार को झूठा मानते हुए कहते हैं कि, मनुष्य संतार के मिथ्या मोह में फंस कर वास्तविक सत्य को भूल चुका है। तब कबीरदास ने भक्ति-रूपी प्रेम-सरिता को प्रवाहित कर, जन-जन में मानवता को संचारित करने का अदम्य साहस किया। कबीरदास ने मानवतावाद को स्थापित करने के लिए समाज में प्रेम, अहिंसा, बन्धुत्व, समानता का प्रसार किया। उन्होंने विषय-विकारों, जातिवाद, ईर्ष्या-द्वेष, छुआछूत, कर्मकाण्ड, आडम्बरों, साम्प्रदायिक वर्ण-व्यवस्था से उत्पन्न भेदों को जड़ से उखाड़ने का अदम्य साहस किया। उन्होंने खण्डनात्मक शैली में जो कुछ कहा उसमें मानवतावाद की ही सुगन्ध व्याप्त थी।

कूट शब्द : कबीरदास, प्रेमानुभूति, मानवतावाद, सामाजिक चेतना

प्रस्तावना :

मध्यकाल में जब मानव-मानव के बीच मानवता का लोप हो रहा था और मानवीय सद्वृत्तियाँ सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा, भक्ति आदि लुप्त हो रही थीं, तब कबीरदास ने भक्ति-रूपी प्रेम-सरिता को प्रवाहित कर, जन-जन में मानवता को संचारित करने का अदम्य साहस किया। 'मानवतावाद' से तात्पर्य है, "वह लौकिक सिद्धान्त जिसमें यह माना जाता है कि संसार के सभी जीवों का समान रूप में कल्याण होना चाहिए और सबको उन्नत करके संतुष्ट तथा सुखी रखने की व्यवस्था होनी चाहिए।"[1] इस प्रकार मानवीय विकास और मंगल की सामूहिक चेतना को ही मानवतावाद कहते हैं।

कबीरदास प्रेम को जीवन का एक महत्त्वपूर्ण और अति आवश्यक तत्त्व स्वीकार करते हैं। प्रेम से उनका आशय सात्त्विक प्रेम से है न कि झूठे प्रेम से। वे संसार को झूठा मानते हुए कहते हैं कि, मनुष्य संतार के मिथ्या मोह में फंस कर वास्तविक सत्य को भूल चुका है। उसे यह स्मरण नहीं कि, ये सांसारिक आकर्षण सैंबल के फूल के समान है। अतः इनसे प्रेम करना व्यर्थ है,

ऐसा यहु संसार है, जैसा सैंबल फूल। दिन दस के ब्यौहार है, झूठे रंगि न भूल।।[2]

प्रभु-प्रेम के द्वारा मनुष्य के 'स्व' का विस्तार होता है और प्रेममयी दृष्टि के द्वारा उसे विश्व के समस्त जड़-चैतन के प्रति ममत्व का अनुभव होने लगता है। साधक को सृष्टि के कण-कण में ब्रह्मत्व के दर्शन होने पर उसकी भावना भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण कर विश्वजनीन हो जाती है। उसे फूल-पत्तियों को भी तोड़ने पर संकोच होने लगता है; क्योंकि

पाति तोरै मालिनी पाती पाती जीउ।[3]

कबीरदास और प्रेमानुभूति :

कबीरदास के अनुसार सभी प्राणियों, वनस्पतियों एवं फूल-पत्तियों में प्रभु का निवास है, और सभी जीव प्रेम के पात्र है। अतः सभी के प्रति अहिंतापूर्वक समानता का व्यवहार करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। कबीरदास मानव सर्वोच्चता को तब तक स्वीकार नहीं करते, जब तक उसके चित्त में स्थापित द्वैत दृष्टि खण्डित नहीं होती। इसके लिए उन्होंने अनेक बार पथभ्रष्ट मानव पर कठोर वज्रपात भी किये हैं। हिन्दुओं एवं मुसलमानों के आडम्बरों एवं अंधविश्वासों की भर्त्सना करते हुए कबीरदास का मत है कि,-

बुत पूजि पूजि हिंदू मुए तुरुक मुए हज जाई। जटा धारि धारि जोगी मुए तेरी गति किन्हु न पाई।।[4]

कबीरदास पुस्तकीय ज्ञान को भ्रम-ज्ञान मानते हैं । इन्हीं पुस्तकों अर्थात् धर्म-ग्रंथों के प्रश्रय में पण्डित एवं मुल्लाओं ने अबोध जनता का अनेक प्रकार से शोषण किया । कबीरदास समाज में प्रसारित अन्धविश्वास, कर्मकाण्ड एवं आडम्बरों को इन्हीं धर्म-ग्रंथों की देन स्वीकार करते हैं। इस सन्दर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मन्तव्य है कि, "वे उस पाण्डित्य को बेकार समझते थे जो केवल ज्ञान का बोझ दोना सिखाता है और भगवान् के प्रेम से वंचित करता है।"[5] इसीलिए कबीरदास ने पुस्तकीय ज्ञान की आलोचना करते हुए कहा कि पढ़ना तभी सार्थक होगा, जब मनुष्य के चित्त में सभी जीवों के प्रति अहिंसा, प्रेम, करुणा, सद्भावना आदि मानवीय सद्वृत्तियों का विकास हो, अन्यथा व्यर्थ पढ़ने से बुद्धि जड़ बनती है और प्रेम-पथ धूमिल होता है,-

कबीर पढिबा दूरि करि, पुसतग देहु बहाइ। बावन अखिर सोधि कै, रैै ममैं चित लाइ।।[6]

कबीरदास का विश्वास है कि, मनुष्य राम-नाम की महिमा का गान करके इस भवसागर को पार कर सकता है, अन्य सभी भेद-भाव व्यर्थ हैं,-

पंडिआ कवन कुमति तुम लागे । बूड़हुगे परिवार सकल सिंउ राम न जपहु अभागे ।।

बेद पुरान पढ़े का क्या गुनु खर चंदन जस भारा । रांम नांम की गति नहिं जांनीं कैसे उतरसि पारा ।।[7]

कबीरदास मानवतावाद के सच्चे साधक थे। उनके हृदय में जीवों के प्रति संवेदना एवं सहानुभूति की भावना व्याप्त थी। वे संसार को सुखी एवं प्रसन्न देखना चाहते थे, इसके लिए उन्हें अनेक कष्टों को भी सहन करना पड़ा । सिकन्दर लोदी ने उन्हें जंजीरों से बंधवा कर गंगा में डुबाने की चेष्टा की, परन्तु वह कबीरदास की निर्भयता को प्रकम्पित नहीं कर सका। कबीरदास ने सच्चे मानव-धर्म की प्रतिष्ठा को बनाये रखने हेतु प्रेम की महत्ता का गायन करते हुए कहा कि -

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नांहिं । सीस उतारै हाथ सौं, तब पैसे घर मांहिं ।।[8]

कबीरदास और मानवतावाद :

कबीरदास मानवता को बन्धन-मुक्त देखना चाहते थे और वे भविष्य में स्वस्थ एवं स्वच्छ दृष्टिकोण के पक्षपाती थे। इसी सन्दर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि, "कबीर ने जो समस्त बाह्याचारों को अस्वीकार करके मनुष्य को साधारण मनुष्य के आसन पर और भगवान् को 'निरपख' भगवान के आसन पर बैठाने की साधना की थी, उसका परिणाम क्या हुआ और भविष्य में वह उपयोगी होगा या नहीं, यह प्रश्न उतना महत्त्वपूर्ण नहीं । ... आज शायद यह सत्य निबिड़ भाव से अनुभव किया जाने वाला है कि, सबकी विशेषताओं को रखकर मानव-मिलन की साधारण भूमिका नहीं तैयार की जा सकती । जातिगत, कुलगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत, शास्त्रगत, सम्प्रदायगत बहुतेरी विशेषताओं के जाल को छिन्न करके ही यह आसन तैयार किया जा सकता है, जहाँ एक मनुष्य दूसरे से मनुष्य की हैसियत से ही मिले।"[9] कबीर ने मानवतावादी दृष्टिकोण को फलीभूत करने हेतु अपना सर्वत्व परमात्मा के जीवों के लिए समर्पित कर दिया था। वे अपने सुख के लिए कभी नहीं रोये, अपितु उन्होंने संसार को सुखी बनाने के लिए विलाप किया

सुखिया सब संसार है खावै अरु सोवै। दुखिया दात कबीर है, जागै अरु रोवै ।।[10]

कबीरदास का विश्वास था कि, मनुष्य को वास्तविक सुख एवं शान्ति की प्राप्ति केवल ईश्वर-भक्ति द्वारा ही हो सकती है। उन्होंने भक्ति-मार्ग में, हिन्दुओं एवं मुसलमानों के द्वारा अपनाये जाने वाले विविध प्रपंचों की तीव्र भर्त्सना की; क्योंकि इन प्रपंचों के द्वारा

सामाजिक विशृंखलता एवं असमानता का प्रसार होता है, जोकि उन्हें स्वीकार नहीं था। इसीलिए उन्होंने मुसलमानों के द्वारा अपनाये गये प्रपंचों की भी आलोचना करते हुए कहा कि,

यह सब झूठी बन्दगी विरथा पंच नवाज । सांयै मारे झूठि पढ़ी काजी करै अकाज ।।[11]

उन्होंने हिन्दुओं के द्वारा अपनाये जाने वाले मिथ्या आर्डम्बरों एवं भेषभावों की खिल्ली उड़ाते हुए कहा है कि,-

कर सेती माला जपै, हिरदै बहै डंडूल। पग तौ पाला मैं गिला, भाजन लागी सूल।।[12]

कबीरदास भक्ति-मार्ग में आडम्बरों एवं कर्मकाण्डों की अपेक्षा प्रेम एवं ज्ञान को अधिक महत्त्व देते हैं। ज्ञान के द्वारा साधक अपने इष्ट का आत्मज्ञान, आत्मविचार और आत्म-दृष्टि से परिचय प्राप्त करता है। प्रेम के द्वारा ज्ञान उत्पन्न होता है, और ज्ञान के द्वारा भ्रम की टाटी उड़ जाती है, आडम्बर, कर्मकाण्ड, विकार एवं सांसारिक मोह-पाश छूट जाते हैं, और परमात्मा के प्रति विश्वास दृढ़ हो जाता है । इत प्रकार भक्ति के द्वारा कुबुद्धि का भाँडा फूट जाता है,-

संतो भाई आई ग्यांन की आंधी रे। भ्रम की टाटी सबै उड़ांनी माया रहै न बांधी रे ।।
दुचिते की दोइ धूनि गिरांनी मोह बलेंडा टूटा। त्रिसना छानि परि घर ऊपरि दुरमति भांडा फूटा ।।

मध्यकाल में मानव-मानव के मध्य मानवता का ह्रास हो चुका था और समाज वर्ग, सम्प्रदाय एवं जातियों-उपजातियों में विभाजित हो चुका था। इसके परिणामस्वरूप चारों ओर जातिवाद, ईर्ष्या, द्वेष और कलह में अभिवृद्धि हो रही थी। कबीरदास मानव को सम्पूर्ण विभेदों से मुक्ति दिलाना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने मानव-मानव के बीच भेद उत्पन्न करने वाले मजहबों, सम्प्रदायों, रूढ़ियों और कर्मकाण्डों की तीव्र आलोचना की। उन्होंने पारमार्थिक सत्ता की एकता को निरूपित कर यह प्रतिपादित किया कि सभी जीवों की उत्पत्ति एक ही ज्योति से हुई है, अर्थात् एक ही परमात्मा सभी जीवों में व्याप्त है, और सभी प्राणी एक ही कलाकार की कृतियाँ है,-

हम तौ एक एक करि जांनां । दोइ कहै तिनहीं कौ दोजग जिन नाहिंन पहिचांनां ।।
एकै पवन एक ही पांनीं एकै जोति समांनां । एकै खाक गढ़े सब भांडै एकै कांहरा सांना ।।
माया देखि कै जगत् लुभाना काहे रे नर गरबांनां। कहै कबीर सुनौ भई साधौ हरि के हाथि काहे न बिकांनां।।[13]

हिन्दू एवं मुसलमान अपनी-अपनी मिथ्या कल्पना के द्वारा परमात्मा के सम्बन्ध में विविध निस्सार धारणाएँ स्थापित कर रहे थे, जिसके कारण साधारण जन तत्य को पहचान नहीं पाता था। इस सन्दर्भ में कबीरदास सामान्यजन को सचेत करते हुए कहते हैं कि, वह परमात्मा एक है। सृष्टि के कण-कण में वह परमात्मा समाया हुआ है, और समस्त सृष्टि के कार्य उसकी इच्छा द्वारा ही सम्पादित होते हैं,-

लोका जांनि न भूलहु भाई । खालिक खलक खलक महिं खालिक सब घटि रहा समाई ।।
अव्वलि अल्लह नूर उपाया कुदरति के सभ बंदे । एक नर तै सब जग कीआ कौन भले कौन मंदे ।।
ता अल्ला की गति नहिं जांनीं गुर गुड़ दीन्हां मीठा । कहै कबीर मैं पूरा पाया तब घटि साहिब दीठा ।।[14]

इस प्रकार कबीरदास ने हिन्दू एवं मुसलमानों में प्रचलित परमात्मा के भेदभाव को मूर्खतापूर्ण माना है। उनकी दृष्टि में सभी जीवों को उत्पन्न करने वाला परमात्मा एक ही है। अतः परमात्मा के सम्बन्ध में कबीरदास किसी द्वैत अथवा भेद को स्वीकार नहीं करते। कबीरकालीन हिन्दू समाज में जातिवाद, छुआछूत एवं वर्णाश्रम-व्यवस्था का अत्यधिक प्रचलन था। मानवतावादी कबीरदास ने इन संकीर्ण भावनाओं को समाज पर कलंक माना है। वे जाति, वर्ण एवं वर्ग को मनुष्यकृत मानते हैं न कि, परमात्माकृत । उनकी दृष्टि में जाति-पाँति का भेद व्यर्थ है,

जाति पांति न लखे कोई भगत भौं भंगी।[15]

छुआछूत का प्रसार करने वाला तत्कालीन पंडित वर्ग था। कबीरदात ने पंडित वर्ग की अत्यधिक खिल्ली उड़ाई है। इस सन्दर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि "कबीरदास का 'पण्डित' बहुत अदना आदमी है, स्वर्ग और नरक के सिवा और कुछ जानता ही नहीं, वह जात-पांत और छुआछुत का अन्ध उपासक है।"[16] कबीरदास धर्म के नैतिक रूप को अपनाने की वकालत करते हैं और धर्म के बाह्य रूप को नकारते हैं। इसीलिए उन्होंने विश्व के समस्त धर्मों के नैतिक आचरणों को सहज धर्म में स्थान दिया है। उनके सहज धर्म की आधारशिला परहित-साधना है। अतः इसे मानव-धर्म भी कहा जा सकता है। उन्होंने अपने सहज धर्म के अन्तर्गत कर्म-काण्डों, आडम्बरों, जातिवाद, विषय-विकारों के परित्याग पर और मानवीय सद्वृत्तियों प्रेम, अहिंसा, करुणा, भक्ति, समता, सन्तोष आदि के निर्वाह पर अत्यधिक बल दिया है। कबीरदास जीवन में समरसता एवं समदृष्टि को सहज धर्म का अनिवार्य अंग स्वीकार करते हुए कहते हैं कि सहज धर्म के साधक को समदर्शिता का भाव अपनाना चाहिए, उसे निन्दा स्तुति, मान-अपमान, लोहा-कंचन सभी को समान रूप से देखना चाहिए।

कबीरदास का सहज धर्म राम-नाम की साधनामात्र है। इसमें मनुष्य युक्तिपूर्वक राम-नाम में तल्लीन रहकर सहज ही परमात्मा से साक्षात्कार कर सकता है। यह साधना सहज इसलिए है कि मनुष्य अपने सांसारिक कार्यों को करता हुआ सहज ही विकारों का परित्याग कर सकता है। --

सहजै सहजै सब गए, सुत बित कामिनी कंम। एकमेक होइ मिलि रहा, दास कबीरा राम।।[17]

कबीरदास का अटल विश्वास है कि, मनुष्य को ब्रह्मत्व की प्राप्ति पाखण्ड एवं आडम्बरों को त्याग कर, मन को शुद्ध कर तन की खोज द्वारा ही हो सकती है। तभी उसका आवागमन छूट सकता है,-

जोगिया तन की जंत्र बजाइ, ज्यू तेरा आवागमन मिटाइ ।। तत करि निहचल आसैंण निहचल, रसनाँ रस उपजाइ ।।
चित करि बटवा तुचा मेषली, भसमै भसम चढ़ाइ । तजि पाखंड पाँच करि निग्रह, खोजी परम पद राइ ।।[18]

अतः प्रभु से साक्षात्कार में साधक की समस्त इन्द्रियाँ अंतर्मुखी हो जाती हैं, और वह स्वयं को ही राममय अनुभव नहीं करता, अपितु उसे समग्र सृष्टि राममय दृष्टिगत होती है, यही कबीर का सहज धर्म है,-

हम सब माँहि सकल हम माँहि । हम थै और दूसरा नाही।।[19]

निष्कर्ष :

इस प्रकार कबीरदास ने मानवतावाद को स्थापित करने के लिए समाज में प्रेम, अहिंसा, बन्धुत्व, समानता का प्रसार किया। उन्होंने विषय-विकारों, जातिवाद, ईर्ष्या-द्वेष, छुआछूत, कर्मकाण्ड, आडम्बरों, साम्प्रदायिक वर्ण-व्यवस्था से उत्पन्न भेदों को जड़ से उखाड़ने का अदम्य साहस किया। उन्होंने खण्डनात्मक शैली में जो कुछ कहा उसमें मानवतावाद की ही सुगन्ध व्याप्त थी। वे नर-नारायण के मिलन में किसी पाखण्ड को स्वीकार नहीं करते थे। अतः कबीरदास सारग्राही, स्पष्टवक्ता, युगचिन्तक एवं युग-द्रष्टा, प्रेमानुभूति से परिपूर्ण मानवतावादी सन्त थे ।

सन्दर्भ सूची :

[1] वर्मा, रामचन्द्र (1966), मानक हिन्दी कोश (खण्ड -2), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ०: 340
[2] तिवारी, पारसनाथ (1961), कबीर ग्रन्थावली, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, पृ०: 142
[3] तिवारी, पारसनाथ (1961), कबीर ग्रन्थावली, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, पृ०: 109
[4] तिवारी, पारसनाथ (1961), कबीर ग्रन्थावली, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, पृ०: 50
[5] द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद (1985), कबीर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ०: 158
[6] तिवारी, पारसनाथ (1961), कबीर ग्रन्थावली, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, पृ०: 241
[7] तिवारी, पारसनाथ (1961), कबीर ग्रन्थावली, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, पृ०: 111
[8] तिवारी, पारसनाथ (1961), कबीर ग्रन्थावली, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, पृ०: 183
[9] द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद (1985), कबीर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ०: 160
[10] दास, श्यामसुंदर (1977), कबीर ग्रन्थावली, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, पृ० : 9
[11] दास, श्यामसुंदर (1977), कबीर ग्रन्थावली, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, पृ० : 33
[12] तिवारी, पारसनाथ (1961), कबीर ग्रन्थावली, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, पृ०: 224
[13] तिवारी, पारसनाथ (1961), कबीर ग्रन्थावली, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, पृ०: 45
[14] तिवारी, पारसनाथ (1961), कबीर ग्रन्थावली, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, पृ०: 108
[15] तिवारी, पारसनाथ (1961), कबीर ग्रन्थावली, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, पृ०: 03
[16] द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद (1985), कबीर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ०: 118
[17] तिवारी, पारसनाथ (1961), कबीर ग्रन्थावली, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, पृ०: 242
[18] दास, श्यामसुंदर (1977), कबीर ग्रन्थावली, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, पृ० : 118
[19] दास, श्यामसुंदर (1977), कबीर ग्रन्थावली, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, पृ० : 150